International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(2): 36-39

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(2): 36-39
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-01-2016
Accepted: 27-02-2016

डॉ. अंजू सेठे
एसोसिएट प्रोफेसर
सत्यवती महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

Correspondence
डॉ. अंजू सेठे
एसोसिएट प्रोफेसर
सत्यवती महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

''श्रीमद्भगवद्गीता वर्तमान मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अचूक समाधान''

डॉ. अंजू सेठ

श्रीमद्भगवद्गीता अपने दुग्धमृत से सम्पूर्ण मानवजाति को परिपुष्ट, परिवृद्ध एवं सिंचित कर विकसित करती है। परमानन्द रूपी रस का संचार करती हुई भगवद्गीता मानव जाति को उसकी प्रत्येक समस्या से संघर्ष करके उसके मूलभूत कारण तथा निवारण का यथोचित समाधन भी प्रस्तुत करती है। गीता के त्रिकालातीत, सटीक, सशक्त एवं सारगर्भित संदेश न केवल महाभारतयुग के 'अर्जुन' के लिए थे अपितु वर्तमानयुग की ज्वलन्त समस्याओं से पीड़ित सम्पूर्ण मानवजाति को ''आशीर्वादात्मक छत्राछाया'' प्रदान करते हैं।

आज के अर्थप्रधान एवं भौतिकवादी युग में यद्यपि मनुष्य विविध शैक्षणिक तकनीकी, वैज्ञानिक, सामाजिक उन्नति के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुंच कर गौरवान्वित हो रहा है परन्तु उन्नति के प्रत्येक शिखर पर पहुंचने के साथ–साथ अनेकों 'मनोवैज्ञानिक ज्वलन्त समस्याएँ' मुख बाए उसकी ओर बढ़ती जा रही है तथा व्यक्ति इन समस्याओं के 'पाश' में अधिकाधिक जकड़ा जा रहा है। बाह्यरूप से मनुष्य अत्यधिक प्रसन्न प्रतीत होता है। परन्तु आंतरिक रूप में वह पीड़ित, दुखी, असन्तुष्ट एवं भयभीत रहता है क्योंकि पगपग पर उमड़ती प्रतिस्पर्ध की दौड़ में पीछे छूटने का भय, सीमित आय प्राप्ति, अल्पपदोन्नति, जैसे अनेकों विषय एक सामान्य व्यक्ति के मनमस्तिष्क को सर्वदा आच्छादित लिए रहते हैं। वह इन विषयों को जकड़न से मुक्ति पाने को छटपटाने लगता है तभी उसे एक ऐसे आश्रय व गुरु भी आवश्यकता प्रतीत होती है जो उसका सर्वथा यथोचित मार्गदर्शन कर सके।

इन सभी विकट परिस्थितियों में श्रीमद्भगवद्गीता दिग्भ्रमित मानव को एक सुदृढ़ मानसिक आधार प्रदान करती हुई एक महत्त्वपूर्ण निर्देशिका के रूप में अवतरित होती है तथा भगवान कुछ भ्रमित मानव की उंगली थाम कर उसे हर समस्या से निकाल ले जाते हैं क्योंकि उनकी मुख्य उद्घोषणा थी।

''यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

'धर्म' से यहाँ तात्पर्य व्यवस्था या 'नियन्त्राण' ही है केवल जातीयता या प्रान्तीय कदापि नहीं है। अर्थात् जहाँ समाज की व्यवस्था या प्रबन्धन में कमी आती है तब ईश्वर अपने दिशानिर्देश सहित वहां विद्यमान हो जाते हैं। जब वे मानवजाति को विविध मानसिक समस्याओं के चंगुल में फँसे देखते हैं, वे तुरन्त अवतरित एवं प्रत्यक्ष होकर अपने 'ईश्वरत्व' का प्रसार कर उसकी रक्षा करते हैं।

वर्तमान युग की मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं में से मुख्य 'मनोद्वन्द्व' है क्योंकि मानव प्रतिस्पर्ध की दौड़ में अपने को सिद्ध करने की इच्छा से वह विकल्पों का आश्रय लेता है तथा पगपग पर उसे मनोद्वन्द्वों से संघर्षरत रहना पड़ता है। मन में उत्पन्न विभिन्न मनोद्वन्द्व व्यक्ति को कोई भी निर्णय नहीं लेने देते ओर वह 'किंकर्त्तव्यविमूढ़ता' की स्थिति में आ जाता है। मन की गति अबाध है। 'मन' का विवेचन एवं उसे अपनी प्रकृति बताते हुए श्रीकृष्ण का कथन है–

भूमिरापाऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकारः इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टध।।

मन की चंचलता से उत्पन्न विभिन्न 'मनोद्वंद्व' भी सर्वदा तरंगायित रहते हैं। अर्जुन के मन में उठने वाली विविध तरंगों एवं लहरों का विहंगम चित्राण एक सामान्य मानव की मन की विविध अवस्थाओं का अनुपम प्रस्तुतीकरण है।

मन में उठने वाले विविध भाव एक स्कूल जाते विद्यार्थी से लेकर एक वयोवृद्ध तक, एक भिखारी से

लेकर एक करोड़पति उद्योगपति तक, महाविद्यालय के छात्रा से लेकर प्रधानाचार्या तक, कार्यरत पुरुषवर्ग से लेकर कार्यरत महिलाओं तक, प्रत्येक वर्ग को आन्दोलित करते रहते हैं तथा समाज के सभी वर्ग इनसे जूझते–जूझते अपनी आयु का काफी अंश बिता देते हैं। मनोद्वन्द्वों की यह सेना अपने क्षेत्रो को विस्तारित करती है तथा 'प्रयत्नशील' को भी अपने पाश में बांध लेती है यथा भगवद्गीता में कहा गया–

''यततोऽपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं च।।''

वास्तव में मनोद्वन्द्वों से घिरा अर्जुन की दिग्भ्रमित हो रहा था–

''न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः''।

सौभाग्य से उसके समीप श्रीकृष्णवत् गुरुविद्यमान थे जो उसे विविध मनोद्वन्द्वों रूपी दानवों से बचाकर सुरक्षित निकाल ले जाते हैं और द्वन्द्वभाव या बहु–विकल्पों का मूल कारण भी उसे स्पष्ट करके समझाते हुए कहते हैं–

''सत्वं रजस्तम इति गुणा प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।''

वर्तमान युग में जब व्यक्ति हर चमकती वस्तु को सोना समझता है तथा अल्पप्रयास से बहुधन प्राप्ति ही उसका एकमात्रा लक्ष्य माना गया है तब वह बहुविकल्पों में से सही को चुन पाने में असमर्थ हो जाता है। वह 'अ' को चुने या 'ब' को इसी उफहापोह में विविध मानसिक प्रताड़नाओं का शिकार हो जाता है। एक छात्रा जो बारहवीं की कक्षा पास लेकर निकलता है वह सही विषय या सही विकल्प न चुन पाने के कारण परेशान होकर 'अल्पनिद्रा' Sleep disorder या। दगपमजल कपेवतकमत का शिकार होता है तब श्रीकृष्ण मन को प्रबल बनाने का संदेश देकर अपने निर्णय पर अडिग रहने का उपदेश देते हैं–

''तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।
(तथा)
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुनः।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगसक्तः स विशिष्यते।।

वास्तव में यदि विकासात्मक मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो यह 'मन की अस्थिरता या मनोद्वन्द्वों' की स्थिति 'समायोजन' के अन्तर्गत समाहित होती है।
आइन्जैक एवं उनके साथियों के मतानुसार कठिन परिस्थिति में सामंजस्य स्थापित करने की स्थिति ही समायोजन है। समायोजन में व्यक्ति दो प्रकार के प्रयास करता है।

1. प्रत्यक्ष प्रयत्न– जिसमें यह परिस्थिति परिवर्तित करना चाहता है– (1) आक्रमण (2) सुलह (3) परिस्थिति से पीछे हटना, इसमें सम्मिलित है।

2. मनोरचनाएँ– द्वितीय प्रयास में वह मनोरचनाऐं करने लगता है जिसमें (1) प्रतिबल (2) दबाव (3) चिन्ता (4) अन्तर्द्वन्द्व (5) कुण्ठा उसकी मुख्य मनोरचनाएं होती है।
भगवद्गीता में दृष्टिपात करने पर अर्जुन परिस्थिति से पीछे हटने की स्थिति में सबसे अधिक था क्योंकि कहा गया–

''विसृज्य सशरं चापं शोकसविष्टमानसः''
दृष्टेवं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।
सीदन्ति मम मात्राणि मुखं च परिशुष्यति।।

इस परिस्थिति में अर्जुन प्रतिनिधि है उस युवावर्ग का जो प्रथमतः तो कोई कार्य प्रारम्भ करने से पहले भ्रमित रहते हैं परन्तु जब आरम्भ कर भी लेते हैं, तो थोड़ी सी विघ्न बाध होने पर ही सबकुछ छोड़छाड़ कर बैठ जाते हैं तब वे निराशा, दबाव, चिन्ता एवं कर्महीनता की आंधियों का शिकार होने लगते हैं। इन आंधियों में निराशा वर्तमानयुग की प्रमुख आंधी है जिसका निवारण श्रीमद्भगवद्गीता में सुष्ठुरूपेण प्रस्तुत किया गया है। आज के युवावर्ग को सबसे अधिक आवश्यकता है। भगवानसदृश निर्देशक एवं दिशाबोधक की जो दिग्भ्रमित तथा विदेशी चाक–चाक्य से पूर्णतया प्रभावित युवापीढ़ी को विदेशी 'High Pay Packets' रूपी दानव से मुक्त करा उन्हें स्वधर्म एवं स्वंसंस्कृति का ज्ञान कराएं–

''स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मे भयावहः''
तथा
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः

यह निराशा की ही अवस्था थी जिसने अर्जुन सदृश महायोद्धा की ऐसी दशा कर दी थी कि धनुष उसके हाथ से छूट रहा था और शरीर कंपनयुक्त था–

''वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्वक्त्रौव परिदह्यते।''

आज भी प्रथम बार मंच पर बोलने आए 'छात्रा' की यही अवस्था होती है। मुख लाल होता है, शरीर कांप रहा होता है और माईक हाथ से छूटता प्रतीत होता है परन्तु सामने बैठा अध्यापक उसे 'वही' खड़े रहने का संदेश देते हुए उससे पूरा भाषण बुलवा देते हैं। ठीक उसी प्रकार अर्जुन की सारी वीरता की परिणति उस दुर्बल क्षण में निराशा में परिवर्तित हो गई थी। यदि मन के उस दुर्बल क्षण में श्रीकृष्ण सदृश आश्चर्यजनक सारथि रूप मनोचिकित्सक उसके पास न होते तो संभवतः इतिहास ही बदल जाता और हम सब गीतारूप मनोवैज्ञानिक पयोधि में अवगाहन न कर पाते। श्रीकृष्ण उसकी (अर्जुन) की दुर्बलता को तुरन्त समझ कर विभिन्न प्रकार से उसे समझाने का प्रयास करते हुए अनेक मुख्य मनोवैज्ञानिक तथ्य उद्घाटित कर जाते हैं। श्रीकृष्ण का कथन है–

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वयुपपद्यते
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोतिष्ठ परंतप।
कुतस्त्वया कश्मलमिदं विषमे समुपस्थित
अनार्यमजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।

कोई कृत्य तुम नहीं करोगे जो तुम्हारी अद्वितीय योद्धारूप कीर्ति के विरूद्ध हो क्योंकि

''संभावितस्य चाकीर्ति मरणादतिरिच्यते।''

श्रीकृष्ण अर्जुन को उसकी शक्ति का एहसास कराने हेतु परन्तप, पार्थ, कौन्तेय, धनऽजय आदि नामों से सम्बोधित कर उसका मनोबल बढ़ाकर उसे उसके मुख्य–कार्य हेतु नियुक्त करने का प्रयास करते हैं। वही सही मार्गदर्शन आज के युवावर्ग एवं धन की चकाचौंध से पीड़ित मानवजाति के लिए अनिवार्य है कि 'निराशा का क्षण' अपने उसपर हावी न होने दें।
निराशा के उपरान्त तनाव भी वर्तमानयुग की मुख्य मनोवैज्ञानिक समस्या है जो एक भयंकर दानववत् मुंह फैलाकर मानवजाति को अपने भीतर समाहित करती जा रही है। शायद ही समाज का कोई वर्ग इससे अछूता बचा हो। एक नन्हें बालक से लेकर केवल विस्तर पर बैठकर अपनी आयु के शेष दिन काटने वाले अत्यन्त वृद्धव्यक्ति भी तनावग्रस्त रहते हैं। तनाव के विषय में कहा गया है–

"Stress typically describes a negative concept that can have an impact on ones mental and physical well being".

आज का मानव अप्राप्तस्य प्राप्तिः अर्थात् 'योग' तथा 'प्राप्तस्य रक्षणम्' अर्थात् क्षेम में अपने जीवन के कई वर्ष बिता देता है। जब इच्छित वस्तु या पद की प्राप्ति नहीं होती तो उसकी प्राप्ति हेतु भरपूर प्रयत्न करता है तब तनावग्रस्त रहता है। परन्तु जब वह वस्तु प्राप्त हो जाती है तो उसके रक्षण हेतु करने वाले प्रयासों से 'तनावग्रस्त' हो जाता है। परन्तु जगत् के परिपालक श्रीकृष्ण तब भी उसकी सहायतार्थ अपनी बहुमूल्य सलाह लेकर उपस्थित हो जाते हैं।

''योगक्षेमं वहाम्यहं''

भगवान श्रीकृष्ण तो जगत् के प्रबन्धक हैं उनके लिए इन सभी समस्याओं का प्रबन्धन सरल कार्य है।

अहमेव गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।

'प्रबन्धन' शब्द से तात्पर्य है 'प्रकर्षरूपेण बन्धनं व्यवस्थापनं निबन्धनम् नियन्त्राणं वा तथा प्रबन्धक वह है जो किसी कार्य को समुचित रूप से सुनियोजित करे तथा व्यवस्थित तभी पूर्ण करे।

''प्रकर्षरूपेण व्यवस्थापयति चालयति इति प्रबन्धकः''।

श्रीकृष्ण दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को नियंत्रित व्यवस्थापित कर तनावरहित रहने का उपदेश देते हैं तथा सम्पूर्ण जगत् को अपने में अहं मानते हैं।

''मतः परतरं नान्यत्किञ्चदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रो मणिगणा।।''

'तनाव' जो वर्तमान युग की मुख्य समस्या है इसके कई कारण है जिसमें अत्यधिक आसक्ति एक मुख्य कारण है। आसक्ति मुख्यतया व्यक्तिगत, आर्थिक (धन सम्बन्धी) किसी विशिष्ट पद के प्रति दृष्टिगोचर होती है। जब इनमें से किसी के भी छिनने का भय आता है।
तो व्यक्ति अत्यंत तनावग्रस्त हो जाता है और अपने वर्तमान को भी भविष्य की चिंता में समाप्त कर बैठता है। ऐसे समय में भगवान पुनः हमारे समक्ष उपस्थित हो हैं तथा प्रत्येक आसक्ति से मुक्त रहकर कर्म करने का उपदेश देते हैं–

असक्तबुद्धिः सर्वत्रा जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धि परमां सन्यासेनाधिगच्छति।।
एतान्यपि तु कर्माणि संर्घै त्यक्त्वा फलानि च।
कर्त्तव्यानि में पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।

'कार्य' की परिणति जब सफलता में नहीं होती तो व्यक्ति तनावग्रस्त होकर अनेक बीमारियों का शिकार बन जाता है। ऐसे में ही मनोचिकित्सक के रूप में अपना चक्र घुमाते हुए भगवान अवतरित होते हैं और व्यक्ति को समझाते हुए कहते हैं कि ''तुम्हारा धर्म तो कर्म ही करना है, फल की इच्छा नहीं। इच्छारहित कर्म ही सभी आंधियों का निवारण है।सं

''कर्मण्येवाधिकारस्ते न फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सर्घौऽस्त्वकर्मणि।।''

यदि आद्यतनीय मानव भगवान कृष्ण की बात माने तो तनाव का राक्षस उसे स्पर्श भी न कर पाए क्योंकि ''योग रूपी कर्म का कौशल मानव को सभी आंधियों से मुक्त करने में सक्षम है–

''योगस्थः कुरु कर्माणि संर्घै त्यक्त्वा धनञ्जय।
थ्सद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।''

एवमेव व्यक्ति विशेष के प्रति अत्यधिक आसक्ति, उसके जाने का दुख अधिकांश मानवों को तनावयुक्त कर जीवन जीने के दृष्टिकोण से ही विमुख कर देता है, उनके प्रति भगवान का कथन है कि आत्मा तो अमर है उसके लिए शोक व्यर्थ है, उसने तो केवल शरीर का ही परिवर्तन किया है। श्रीकृष्ण का यह उपदेश किसी के मरते हुए व्यक्ति में भी प्राण फूक सकता है।

''वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णाणि
अन्यानि संयाति नवानि देही।।

''अरिषडवर्ग'' के पाश में फंसा प्राणी विविध कर्मफलभोगों को भोगता हुआ कभी धन की लालसा, कभी शक्तियां पद की लालसा से पीड़ित होकर भयंकर यथार्थता का वर्णन कर श्रीकृष्ण कहते हैं–

''ध्यायतो विषयान्पुंसः संर्घैस्तेषूपजायते।
सर्घौत्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधेऽभिजायते।।
क्रोधद्भवति संमोहः सम्मोहादस्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।''

इसी शृंखला में 'बुद्धिनाश' अर्थात् 'सही वक्त पर सही निर्णय न लेने की क्षमता' तथा 'कर्महीनता' उसे जकड़ लेती है तथा प्राणी इन समस्याओं से मुक्ति पाने हेतु छटपटाने लगता है। तब भी भगवानश्री तुरन्त निर्णय लेने की अर्जुन को प्रेरित करने के सम्पूर्ण मानव जाति को संदेश देते हैं। यही आजकल के उद्योग पतियों हेतु मुख्य संदेश है।

''हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुतिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

वास्तव में अकर्मण्यता या कर्महीनता ही विविध समस्याओं विशेषतः तनाव, कुण्ठा, द्वेष का मुख्य कारण है उनके (कर्महीनों के) प्रति श्रीकृष्ण का वक्तव्य ध्यातव्य है–

''नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्राापि च ते न प्रसिह्येदकर्मणः।।''

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भगवद्गीता विभिन्न मनोवैज्ञानिक तथ्यों की वह पवित्रा गंगा है जो विविध मनोवैज्ञानिक धराओं को अपने भीतर समाहित किए हुए है उसमें जितना अवगाहन किया जाए उतने ही गहनतत्त्व प्रकट होते जाते हैं। आज के युग में मनोद्वन्द्व, मनोरचनाएं, निराशा, तनाव, कर्महीनता आदि मनोवैज्ञानिक समस्याएँ जो मानवजाति को पथभ्रष्ट एवं ग्रसित करती जा रही है उस समय भगवान कृष्ण कहीं सखा रूप में, कहीं आत्मविश्लेषण के शिक्षकरूप में कहीं सही पथप्रदर्शक गुरु के रूप में तथा सबसे अधिक एक मनोचिकित्सक अथवा मनोनिर्देशक के रूप में अपना अनुपम दैवीय रूप प्रसारित कर जाते हैं। और हम सब हाथ जोड़ कर बस यही कह पाते हैं

''त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।''

उनके उपदेश से सभी मानसिक चक्रव्यूह कट जाते हैं। मेरे मत में तो आज मानवजाति इसी प्रतीक्षा में है कि कभी तो संभवतः ईश्वर स्वयं पीताम्बर धारण करके आएं और मनोद्वन्द्व एवं मनोविज्ञान सम्बन्धी सभी दुःखों से अति मानवजाति को अपनी आशीर्वादात्मक मुद्रा में, मन्द मन्द मुस्कुराते हुए न केवल ।सस पे ूमसस अपितु मेरे रहते "All will be well" का संदेश देते हुए यह कहें–

''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षिष्यामि मा शुचः।।''